आगमिक दृष्टि में शब्दब्रह्म एवं मातृकाविमर्श

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा, समन्वयक, उच्च अध्ययन केन्द्र, दर्शनशास्त्र विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

अहकारौ शिवशक्ती शून्याकारौ परस्पराश्लिष्टौ।
स्फुरणप्रकाशरूपावुपनिषदुक्तं परं ब्रह्म।। वरिवस्या रहस्य

काश्मीर शैव दर्शन की परम्परा में साधना का सर्वोच्च स्थान है क्योंकि जीव को यही पुन: शिव रूप में परिणत करती है। शब्द ब्रह्म एवं मातृका ही इस साधना का मूलाधार है।

शब्दब्रह्म एवं मातृका

साधना पद्धति के अवलोकन से सिद्ध होता है कि इसका मूल शब्दब्रह्म की अवधारणा है तथा मातृका उसका व्यक्त रूप है। अतः सभी प्रकार की भारतीय साधना पद्धतियों में सर्वप्रथम मातृकाओं का न्यास शरीर के बाह्य तथा आन्तरिक अंगों में किया जाता है। तन्त्रालोक में 'षडध्वा' की परिभाषा करते हुए महामाहेश्वर अभिनव गुप्त इसके छ: भेदों की चर्चा इस प्रकार करते हैं–

कला तत्त्वं च भुवनं वर्णः पदमतः परम्।
मन्त्रश्चेति समासेन षडध्वा परिपठ्यते।।

तन्त्रालोक इनमें प्रथम तीन का सम्बन्ध वाक् के अर्थतत्त्व से है तथा शेष तीन का सम्बन्ध शब्दतत्त्व से है। वस्तुतः वर्ण, पद और मन्त्र यह तीनों शब्दरूप ही हैं। शब्द के तीन स्तर हैं, जिन्हें स्थूल, सूक्ष्म तथा पर भी कहा गया है। शब्द ज्ञान, इच्छा तथा क्रिया के रूप में विवर्तित होता है। जिसे त्रिकदर्शन में क्रम, कुल तथा त्रिक माना गया है। जिनकी शुद्धि हेतु आणव, शाक्त तथा शाम्भव उपायों का वर्णन इस परम्परा में बहुधा किया जाता है। तुरीय अनुपाय में आनन्द का प्राधान्य रहता है।

शाक्त परम्परा में भी इसी षडध्वा को निर्विवाद रूप में तथैव मान्य किया गया है। यथा द्रष्टव्य है कामकला विलास का यह वचन–

वर्णःकला पदं तत्त्वं मन्त्राः भुवनमेव च।
इत्यध्वषट्कं देवि भाति त्वयि चिदात्मनि।।

वस्तुतः समस्त वर्णमातृका ही मन्त्रस्वरूपा है, कोई भी ऐसा वर्ण नहीं है। जो मन्त्र नहीं हो। अतः समस्त वर्गों को मन्त्रात्मक कहा गया है तथा कोई भी मन्त्र शक्ति के बिना रह नहीं सकता है। वह शक्ति ही मातृका कहलाती है, यथा

सर्वे वर्णात्मका मन्त्राः, ते च शक्त्यात्मका प्रिये।
शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका।।

मातृका के द्वारा सर्वप्रथम साधक के शरीर में न्यास सम्पन्न किया जाता है जिससे जीव में शिवत्व का स्फुरण हो सके। साधना में मन्त्र, देवता, गुरु तथा साधक का अद्वैत सिद्ध करना पड़ता है। गुरु के द्वारा दीक्षा विधि से मन्त्र को अधिगत करके साधक देवता के ध्यान में निरत होकर उसके वर्णमातृका रूप मन्त्र का निरन्तर जप कर ऐक्य की प्राप्ति कर लेता है। अतः साधना का मूल आधार एवं सेतु वर्णमातृका सिद्ध होती है। रहट्ट में जिस प्रकार एक घट्ट के प्रवाहित होने पर यन्त्र के सभी घट्ट प्रवाहित होने लग जाते हैं उसी प्रकार गुरूपदिष्ट मन्त्र के प्रयोग अद्वयानन्द की प्राप्ति सहजता से हो जाती है। अभिनव गुप्त स्पष्ट रूप में कहते हैं–

यथारघट्टचक्राग्रघटीयन्त्रौघवाहनम्।
एकानुसन्धियत्नेन चित्रं यन्त्रोदयं व्रजेत्।।
एकानुसन्धानबलाज्जायते मन्त्रोदयेऽनिशम्।
तन्मन्त्रदेवतायत्नात् तादात्म्येन प्रसीदति।। तन्त्रालोक सप्तम आह्निक।

वर्णमातृका वस्तुतः वर्णमाला ही है। इसका प्रत्येक अक्षर अपार शक्ति प्रदाता है। इसकी शक्ति का साक्षात्कार गुरुकृपा ही सम्भव है। वेदों में वर्णमातृका की महत्ता सुस्पष्ट रूप में प्रतिपादित है–

मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी।
ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्यसाक्षिणी।।
यस्या परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता।। देव्यथर्वशीर्ष

गीता में 'अक्षराणामकारोऽस्मि' दुर्गासप्तशती में 'अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः।' इत्यादि कथन इस वर्णमातृका की ब्रह्मरूपता का सुदृढ़ समर्थन करते हैं। वस्तुतः प्रणव सर्व वाक्-तत्त्व का बीज है, जिसका स्थूल रूप वर्णमातृका है, अतः योग सूत्र में ईश्वर का वाचक प्रणव कहा गया है तथा गीता में स्पष्टतः कहा गया है ओम् ही एकाक्षर ब्रह्म है–

ॐ इत्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्।।

पुष्पदन्त आचार्य ॐ की ब्रह्मरूपता को इस प्रकार उद्घोषित करते हैं–

त्रयी तिस्रो वृत्तिस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरान्।
अकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति।।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः,
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम्।।

इस तत्त्व को काश्मीर शैव दर्शन के प्रसिद्ध ऋषि दुर्वासा अपने शक्तिमहिम्नः स्तोत्र में इस प्रकार वर्णन करते हैं–

आद्यैरग्निरवीन्दुविम्बनिलयैरम्ब त्रिलिङ्गात्मभिः।।
मिश्रारक्तसितप्रभैरनुपमैर्युष्मत्पदैस्तैस्त्रिभिः।।
स्वात्मोपपादितकाललोकनिगमावस्थामरादित्रयैः।
उद्भूतं त्रिपुरेति नाम कलयेद्यस्ते स धन्यो बुधः।।

पञ्चस्तवी में मातृका को कुण्डलिनी कहा गया है–

या मात्रा त्रपुसीलतातनुलसत्तन्तुस्थितिस्पर्द्धिनी,
वाग्बीजे प्रथमे स्थिता तव सदा तां मन्महे ते वयम्।
शक्तिः कुण्डलिनीति विश्वजननव्यापारबद्धोद्यमा,
ज्ञात्वेत्थं न पुनर्विशन्ति जननीगर्भेऽर्भकत्वं नराः।।

आचार्य शंकर ने अपने प्रपञ्चसार में शब्द को ही ब्रह्म स्वीकारा है–

बिन्दोस्तस्माद् भिद्यमानादव्यक्तात्मा रवोऽभवत्।
स रवः श्रुतिसम्पन्नैः शब्दब्रह्मेति गीयते।।

स्वयं आचार्य अभिनव गुप्त ने शिव की षड्विधस्वरूपता इस प्रकार प्रतिपादित की है–

भुवनं विग्रहो ज्योतिः खं शब्दो मन्त्र एव च।
बिन्दुनादभिः सम्भिन्नः षड्विधःशिव उच्यते।। तन्त्रालोक १.६३
बिन्दुर्नादस्तथा व्योम मन्त्रो भुवनविग्रहो।।
षड्वस्त्वात्मा शिवो ध्येयः फलभेदेन साधकैः।।

अतः प्रत्येक शब्द ही ब्रह्म स्वरूप निर्विवाद रूप से सिद्ध होता है। परन्तु साधना में अनुभव के आधार पर विविध मन्त्रों का प्रयोग आचार्य अपनी परम्परा के अनुसार करते हैं। वर्णमातृका के पीठों का न्यास साधक अपने शरीर में प्रारम्भ में नित्य करे–

आत्मनो वाथवा शक्तेश्चक्रस्याथ स्मरेदिदम्।
न्यस्यत्वेन विधिं देहे पीठाख्यं परमेश्वर।। तन्त्रालोक २९.५८

इसी प्रकार तन्त्रालोक (२९.५९–६३) में शरीर में मातृका न्यास की विधि उपवर्णित है। अतः वर्णमातृका की प्रधानता समग्र साधना पद्धतियों में अनिवार्यतः मानी गई है। वर्णमातृका के प्रयोग से साधक संस्कृत होता है। तत्पश्चात् अपनी परम्परा के विशेष मन्त्रों के द्वारा उसमें विशेषताओं का स्फुरण हो सकता है।

पाणिनि व्याकरण के चतुर्दश शिवसूत्र के आगमिक व्याख्या का विमर्श इस शोध निबन्ध का प्रमुख ध्येय है। तन्त्रागम परम्परा में मन्त्र अर्थात् शब्द को ब्रह्म मानकर ही साधना की जाती है। मन्त्र की अमोघ शक्ति सर्वत्र स्वीकार्य है। वैयाकरणों का स्फोट तो यथार्थत: प्रणवरूप ही है। प्रणव का प्रादुर्भाव ब्रह्म से ही होता है। प्रणव को ब्रह्म का वाचक पतञ्जलि स्पष्ट रूप में स्वीकार करते हैं–'तस्य वाचक: प्रणव': (योगसूत्र)। यहाँ अवधेय है कि जिस प्रकार ब्रह्म से ईश्वर को द्वार मानकर (ईश्वर के द्वारा) आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी आदि सकल रूपमय सृष्टि के उपादानभूत पञ्चभूतों की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार ब्रह्म से प्रणव के द्वारा अकार से क्षकार पर्यन्त पचास नामरूप वर्णों की उत्पत्ति होती है। जैसा कि आगमों में अभियुक्तों ने प्रतिपादित किया। आगमों में अभियुक्तों ने लिखा है–

आदिक्षान्ता इमे वर्णा: सम्भूता: परमात्मन:।
द्वारीकृत्य प्रणवकं सर्वशब्दस्य कारणम्।।
अकारात् स्वरसम्भूति: स्पर्शसृष्टिरुकारत:।
अन्त:स्थोष्मक्षकाराणां मकारात्सम्भवो मत:।।
स्वरा: षोडश विज्ञेया: स्पर्शास्तु पञ्चविंशति:।
अन्त:स्थाश्च तथोष्माण: वेदवेदमिता: स्मृता:।।
क्षकारो वर्णसंयोगस्योपलक्षणमीरित:।
ह्रस्वदीर्घावुभौ भेदावनाद्यौ हि प्रकीर्तितौ।।
प्लुत उत्पत्तिकालीनोऽत: पाश्चात्त्यो विधीयते।

इनका तात्पर्य यह है कि अकार से क्षकार-पर्यन्त जो पचास वर्ण हैं, जो समस्त शब्दमय नाम जगत् के कारण हैं, उनका प्रादुर्भाव उसी ब्रह्म से प्रणव के द्वारा हुआ है। 'ॐ' इस प्रणव में अ, उ, म् ये तीन वर्ण हैं। उनमें अकार से स्वर (अ, आ, इ, ई इत्यादि), उकार से स्पर्श (क से म तक) और मकार से अन्त:स्थ, ऊष्म तथा क्षकार का प्रादुर्भाव हुआ है। स्वर सोलह, स्पर्श पचीस, अन्त:स्थ चार, ऊष्म चार और क्षकार एक-ये सब मिलाकर ५० वर्ण होते हैं। समस्त संयुक्त वर्णों का उपलक्षण क्षकार है। स्वर में जो ह्रस्व, दीर्घ आदि भेद हैं, वे अनादि हैं। प्लुत उत्पत्तिकालीन होने से पाश्चात्य (पीछे का) माना गया है। ये ही पचास वर्ण समस्त वाङ्मय जगत् के उपादानकारण माने गये हैं।

वर्णों का स्थूलशरीर में आविर्भाव-प्रकार

स्थूल शरीर में व्यापक वर्णों का जिस प्रकार आविर्भाव होता है, उसका वर्णन संक्षेप में शास्त्रानुसार इस प्रकार है कि मूलाधारचक्र में भगवान् शब्दब्रह्म का निवास है, जिनकी रश्मियाँ ऊपर की ओर जाती हैं। उस ऊर्ध्वरश्मि वाले शब्दब्रह्म के महिमा-प्रदर्शन के लिए सकललोकव्यवहारार्थ इस स्थूल शरीर में मूलाधार से ललाटस्थ आज्ञाचक्र तक जो षट्चक्र चक्र बताये गये हैं, उन्हीं चक्रों में वर्णों के आविर्भाव के लिए योगियों ने उन वर्णों के आश्रयीभूत कमलों की कल्पना की है। शब्द स्फोट की जो वायवीय रश्मियाँ हैं, वे मूलाधार से उद्गत होकर (ऊपर उठकर) उन्हीं पद्मपत्रों में वर्णभाव को प्राप्त करती हैं, अर्थात् वर्णरूपों में परिणत हो जाती हैं। बाद में कण्ठ, तालु आदि स्थानों के अभिघातों से विभिन्न रूपों में मुख के द्वारा प्रादुर्भूत होती हैं। पुन: श्रोताओं की श्रोत्रेन्द्रियों के द्वारा भीतर प्रविष्ट होकर उन पद्मपत्रों में स्थित वर्णों के द्वारा ही अपने मूल कारण स्फोट ब्रह्म में लीन हो जाती हैं। यही वर्णों के आविर्भाव और तिरोभाव का क्रम है।

वर्णों के आश्रयीभूत पद्मपत्र एवं मूल आधार स्थान

वैदिक एवं आगमिक विद्वान् प्रतिमा में जो प्राण-प्रतिष्ठा कराते हैं, उसमें अन्तर्मातृका का न्यास होता है। उसी में समस्त शब्दों के उपादानभूत पारमार्थिक स्फोट-तत्त्व का प्रकाशक मातृका नाम का जो शब्द-तत्त्व है, उसका ध्यान करने के लिए तान्त्रिक लोग एक श्लोक पढ़ते हैं-

आधारे लिङ्गनाभौ हृदयसरसिजे कण्ठदेशे ललाटे
द्वे पत्रे षोडशारे द्विदशदशदले द्वादशार्धे चतुष्के।
वासान्ते बालमध्ये डफकठसहिते कण्ठदेशे स्वराणाम्
हं क्षं तत्त्वार्थयुक्तं सकलदलगतं वर्णरूपं नमामि।। -योगसूत्रभाष्य

अभिप्राय यह है कि आधार=मूलाधार, लिङ्गमूल, नाभि, हृदय, कण्ठदेश और ललाट-इन स्थानों में छह चक्रों की कल्पना योगियों ने की है। उनके प्रत्येक चक्र में एक-एक कमल की भी कल्पना की गई है। उनमें आधारचक्र में चतुर्दल कमल है, लिङ्गमूल में षड्दल, नाभि में दशदल, हृदय में द्वादशदल, कण्ठ में षोडशदल और ललाट में द्विदल कमल हैं। उन कमलों के एक-एक (पत्र) पर एक-एक वर्ण के आविर्भाव होने का स्थान है। जैसे, आधारचक्र में वर्तमान चार दलवाले कमल में व से स तक-व, श, ष और स ये चार वर्ण प्रत्येक दल में एक-एक हैं। लिङ्गमूलस्थ षड्दल वाले कमल में ब से ल तक अर्थात् ब, भ, म, य, र, ल तक ये छह वर्ण हैं। नाभिस्थ दशदल वाले कमलदलों में ड से फ तक ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प और फ ये दस वर्ण प्रत्येक दल में एक-एक हैं। हृदयस्थ द्वादश दल वाले कमल में क से ठ तक बारह वर्ण, अर्थात् क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट और ठ ये ही बारह वर्ण प्रत्येक दल पर एक-एक हैं। कण्ठदेश सोलह दल वाले कमल में स्वर, अर्थात् अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः ये सोलह वर्ण प्रत्येक दल में रहते हैं तथा दो दल वाले ललाटस्थ कमल में हं, क्षं ये दो वर्ण रहते हैं।

इस प्रकार, मूलाधार से ललाट-पर्यन्त छह स्थानों में छह कमलों और उनके पचास दलों की जो कल्पना की गई है (जिनमें उक्त पचास वर्णों की अभिव्यक्ति होती है) वह निरर्थक कपोल-कल्पित या निराधार नहीं है। उसमें एक गूढ़ रहस्य है। जब वक्ता किसी अर्थ के वाचक शब्द का प्रयोग करना चाहता है तब उसकी आत्मा उस अर्थ को बुद्धि से लेकर कहने की इच्छा से मन के साथ संयोग करती है, मन कायाग्नि (जो नाभिस्थ स्वाधिष्ठानचक्र में स्थित है, जो विवक्षात्मिका शक्ति से प्रेरित करता है, वह कायाग्नि भी मूलाधारस्थ वायु को प्रेरित करता है। वह वायु अपने स्थान से उद्गत होकर ऊपर की ओर चलता है तो उसी विवक्षा (कहने की इच्छा) शक्ति से उस अभीष्ट वर्ण के स्थान का स्पर्श करता है, जिस स्थान को योगियों ने उपर्युक्त वर्णों के आधारभूत कमलदलों के रूप में देखा है। ये ही वर्णों के आभ्यन्तर प्रयत्न हैं। कण्ठ, तालु, ओष्ठ आदि जो वर्णों के स्थान बताये गये हैं, वे तो ब्रह्मस्थान हैं। बिना आभ्यन्तर स्थानों के स्पर्श किये इन वर्णों की अभिव्यक्ति कदापि नहीं हो सकती। जिस प्रकार ओष्ठों को सटाये बिना प, फ आदि वर्णों का उच्चारण नहीं कर सकते और बिना कण्ठस्पर्श के क, ख आदि वर्णों का उच्चारण नहीं हो सकता, उसी प्रकार आभ्यन्तर स्थानों के स्पर्श किये बिना किसी अभीष्ट वर्ण का उच्चारण असम्भव है। तत्-तत् आभ्यन्तर स्थानों के स्पर्श होने पर ही उन स्थानों में वर्णों का आविर्भाव होना युक्तियुक्त प्रतीत होता है। कण्ठ, ओष्ठ आदि बाह्य स्थानों के स्पर्श का अनुभव तो प्रायः सबको प्रत्यक्ष है, परन्तु वर्णों के मूल आधार स्थान का साक्षात्कार केवल योगियों को ही होता है।

वर्णों के मूल आधार स्थान के साक्षात्कार हेतु दिव्य दृष्टि की आवश्यकता होती है। जब योगी प्राणायाम एवं प्रत्याहार के द्वारा बहिर्मुखी चित्तवृत्ति का निरोध कर, धारणा एवं समाधि में षट्चक्र के

भेदन की प्रक्रिया के निरन्तर अभ्यास से पश्यन्ती का साक्षात् अनुभव प्राप्त कर सकता है। पहले आभ्यन्तर वर्णों के स्थानों का अनुभव होता है तत्पश्चात् प्रकाश का आविर्भाव होता है। प्रकाश का साक्षात्कार करने वाला ही वास्तव में शब्द का साधक है। सम्पूर्ण वाङ्मय जगत् में उसका ही आधिपत्य होता है। वह निर्विकल्प समाधि में परा शक्ति का साक्षात्कार करके कृत्यकृत्य हो जाता है। वर्णों के इस अलौकिक आन्तरिक स्वरूप को देखने हेतु अर्जुन की तरह दिव्य चक्षु की आवश्यकता है। वेदवाणी संस्कृत ही मन्त्रों की दिव्य-शक्ति से समन्वित है। यदि अपभ्रंश भाषा का प्रयोग मन्त्र के रूप में किया जाये तो उसमें दिव्य-शक्ति का समावेश तन्त्र शास्त्रों में स्वीकार्य नहीं है। कतिपय वैयाकरण अपभ्रंश में लोकव्यवहार अर्थज्ञान तो स्वीकार करते हैं पर पुण्यजनकता स्वीकरणीय नहीं है।

जीवों में चेतना जिस प्रकार ईश्वर प्रदत्त है वैसे ही प्रणव के द्वारा वर्णमातृका में अर्थवत्ता प्रदान की जाती है। तब संस्कृत वर्ण मन्त्रमय बन जाते हैं। जिस प्रकार ईश्वर सकल सृष्टि के नियमन हेतु ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि रूप में आविर्भूत होकर समस्त चेतन सृष्टि का कारण बनकर प्राणियों के नियमन को सम्भव करता है तथैव प्रणवात्मक स्फोट परमार्थ का वाचक होने के कारण वास्तविक अर्थवान् मन्त्र ब्राह्मणात्मक वाक्य स्फोट है उसके आविर्भाव के लिए मातृका वर्णों को लेकर 'अक्षर समाम्नाय' नाम से विशिष्ट रचना को धारण करता है। माहेश्वर के १४ सूत्र अइउण आदि को अक्षर समाम्नाय या अक्षरवेद कहते हैं।

चतुर्दश शिव सूत्र हैं- १. अइउण्, २. ऋलृक्, ३. एओङ्, ४. ऐऔच्, ५. हयवरट्, ६. लण्, ७. ञमङणनम्, ८. झभञ्, ९. घढधष्, १०. जबगडदश्, ११. खफछठथचटतव्, १२. कपय्, १३. शषसर्, १४. हल्।

'अ इ उण्' आदि सूत्रों के वर्णसमाम्नायत्व का व्यवस्थापन

इन सूत्रों की आगमिक व्याख्या नन्दिकेश्वर के द्वारा 'काशिका' नामक छोटे-से ग्रन्थ में की गई है जो दुर्लभ है। अत: उसका सारभूत विवेचन पं. रङ्गनाथ पाठक ने अपने विश्रुत ग्रन्थ 'स्फोटदर्शन' (पृ. ४९-५८) में किया है जो यहाँ साररूप में प्रस्तुत है।

'अइउण्' इत्यादि सूत्रों के अक्षरवेदत्व-व्यवस्थापन के लिए महर्षियों द्वारा प्रदर्शित अलौकिक अर्थ का प्रदर्शन जिज्ञासुओं के लिए करना आवश्यक प्रतीत होता है। यह अलौकिक अर्थ नन्दिकेश्वर मुनि ने मुनियों से कहा है। यह इतिहास किसी विद्वान् को अविदित नहीं है कि स्वयं भगवान् शङ्कर ने सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, सनातन और नन्दिकेश्वर आदि मुनियों की तपस्या से सन्तुष्ट होकर उनके उद्धार की कामना से प्रेरित होकर ढक्कानाद के व्याज से चतुर्दशसूत्रात्मक तत्त्वों का उपदेश किया। उसके बाद समस्त मुनियों ने परस्पर विचार किया कि बहुत काल तक तपस्या करने से प्रसन्न होकर हम लोगों

के उद्धार के लिए ही भगवान् शङ्कर ने ढक्कानाद के व्याज से तत्त्व का उपदेश किया है, परन्तु हम लोगों की समझ में नहीं आता है। इन सूत्रों का यथार्थ अर्थ परम दयालु भगवान् शङ्कर के परम अनुग्रह के पात्र नन्दिकेश्वर ही जान सकते हैं इसलिए उन्हीं से पूछना चाहिए। ऐसा विचार कर सब मुनियों ने उनके पास जाकर प्रणतिपूर्वक सूत्रों का तत्त्वार्थ पूछा। महामुनीश्वर नन्दिकेश्वर ने निम्नविवृत्त २७ कारिकाओं में उन लोगों को तत्त्वोपदेश करने के उपक्रम में यह कहा–

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।
उद्धर्त्तुकामः सनकादिसिद्धान् एतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्।।१।।

नटराजराज भगवान् शङ्कर ने अपने आत्मतत्त्व को प्रकाशित करने के लिए ढक्कानाद के व्याज से सनकादि मुनियों के उद्धार के लिए अपने अन्तःस्थित आत्मतत्त्व को प्रकाशित करते हुए नृत्त के अन्त में चौदह बार ढक्का (डमरू) को बजाया। उससे जो भी वर्ण निकले, वह मातृका निकले। वे यद्यपि क.ख. आदि मातृका-रूप सनातन है, तथापि परमार्थ का प्रकाशक ब्राह्मणात्मक वेद में प्रवृत्ति के लिए अखण्ड पदस्फोट-रूप जो प्रणव है, उसी से उद्भूत वर्ण-स्फोटात्मक मातृका-वर्ण क.ख.ग. आदि से विलक्षण अ इ उण् आदि के रूप में शिव ने प्रकट किया। श्लोक में 'शिवसूत्रजालम्' का तात्पर्य है-शिव के प्रोक्त अतिरहस्य-रूप सूत्रजाल। अथवा शिव कल्याण को भी कहते हैं, इससे यह अर्थ हुआ कि सकल वेद-मन्त्रों के उपादान होने से कल्याण-रूप सूत्रसमूह। 'विमर्श' का तात्पर्य है, 'विचार्य स्फोटीकरोमि'-विचार कर प्रकाशित करता हूँ। 'विमर्श' यह प्रयोग क्रिया के रूप में छान्दस है।।१।।

अत्र सर्वत्र सूत्रेषु अन्त्यं वर्णचतुर्दशम्।
धात्वर्थं समुपादिष्टं पाणिन्यादीष्टसिद्धये।।२।।

इन सब सूत्रों के अन्त्यं वाले चौदह वर्णों का उपदेश भगवान् महेश्वर ने पाणिनि आदि महर्षियों की इष्टसिद्धि के लिए किया है, जो धात्वर्थ हैं, अर्थात् धातुमूलक शब्दशास्त्र प्रवृत्त्यर्थ हैं। इससे यह सूचित होता है कि अनुबन्धों को निर्देश के लिए महेश्वर ने ही लगाया है और वे भी आदि अन्त-रहित और वेद के भी मूल हैं। 'धात्वर्थ' से यह सूचित होता है कि उन्हीं अनुबन्धों से धातुओं के शास्त्रीय निरूपण की कल्पना की गई है। इन्द्र ने लिखा है-'अन्त्यवर्णसमुद्भूताः धातवः परिकीर्त्तिताः' अर्थात् अन्त्य वर्णों से ही धातु उत्पन्न हुए हैं।।२।।

अकारो ब्रह्मरूपः स्याद् निर्गुणः सर्ववस्तुषु।
चित्कलामिं समाश्रित्य जगद्रूपमुदीरितः।।३।।

प्रथम माहेश्वर सूत्र से सब वर्णों तथा समस्त भुवनों का समुद्भव (उत्पत्ति) रूप स्वात्मतत्त्व का उपदेश किया गया है, ऐसी प्रतीति होती है। उसी बात को दिखाने के लिए कहते हैं–'अकारः' इत्यादि। अकारः='अइउण्' का अकार निर्गुण परमात्मा 'इ' चित्कला=माया का आश्रयण कर 'उण्' अर्थात् सगुण सर्वव्यापक रूप में आविर्भूत हुआ, अथवा निर्गुण परमात्मा चित्कला माया का आश्रयण कर सगुण व्यापक रूप में भासित होता है। पहले स्वर सृष्टि–क्रम में अ. इ. उ. ऋ.लृ. इन्हीं पाँच स्वरों का आविर्भाव हुआ। इन्हीं पाँच स्वरों से पञ्चभूत और पञ्चवर्गों का आविर्भाव होता है। पञ्चभूतों के द्वारा समस्त् रूपात्मक जगत् और वर्णों के द्वारा सकल शब्दमय जगत् की सृष्टि हुई।।३।।

इन सन्दर्भों से यही प्रतीत होता है कि वर्णों की उत्पत्ति के क्रम में पहले अ का ही प्रादुर्भाव हुआ है। 'ॐ' में भी पहला अक्षर अकार ही है। इसी अभिप्राय से भगवान् के उपदेशामृत–भगवद्गीता में स्वयं भगवान् ने ही कहा–'अक्षराणामकारोऽस्मि', में अक्षरों में अकार हूँ।

इसके अनन्तर इसी सूत्र की विशद व्याख्या छह कारिकाओं में है–

अकारः सर्ववर्णाग्र्यः, प्रकाशः परमेश्वरः ।
आद्यमन्त्येन संयोगात् अहमित्येव जायते।।४।।

इस कारिका में 'आदिरन्त्येन सहेता' यह सूत्र भी सूचित होता है। आदि, अर्थात् 'अ इ उण्' का अकार, अन्त्य हो='हल' सूत्र का हकार ये दोनों मिलकर अहम् प्रत्याहार बनता है।।४।।

इस अहम् के भीतर जितने वर्ण हैं, ये सब ईश्वर का वाचक जो प्रणवात्मक स्फोट वस्तु है, उसी से ही आविर्भूत होते हैं। यही बात विशद रूप से आगे कही गई है–

सर्वं परात्मकं पूर्वं ज्ञप्तिमात्रमिदं जगत्।
ज्ञप्तेर्बभूव पश्यन्ती मध्यमा वाक् ततः परम्।।५।।
वक्त्रे विशुद्धिचक्राख्ये वैखरी सा मता ततः।
सृष्ट्याविर्भावमध्यात्मं मध्यमावाक्समायुतम्।।६।।

इसका अभिप्राय यह है कि आधारचक्र–स्थित पराशक्यात्मक स्फोट तत्त्वा ही, जिसको शब्दब्रह्म भी कहते हैं, परमात्मा का प्रकाशक है। वही अनादि जीवोपाधि के आश्रित होकर कर्मप्रेरित प्राणवायु के व्यापार के बाद नाभिचक्र में जाकर पश्यन्ती के रूप में परिणत होता है। बाद में वही उसी प्राणवायु की सहायता से हृदयस्थ अनाहतचक्र में मध्यमा शब्द का वाच्ये होता है।।५।। इसके बाद में

उसी वायु की जो सहायता है, उसके द्वारा कण्ठस्थ विशुद्धिचक्र में जाकर वैखरी नाम से विभूषित हो, सकल वेद, शास्त्र, पुराणादि समस्त वाङ्मय जगत् के आकार में परिणत होती है या इन्हीं के आकार में भासित होती है।।६।।

इस वास्तविकता को श्रुति भी पुष्ट करती है–'वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे' अर्थात् परा नाम की वाक्शक्ति ही समस्त विश्व शब्दों के आकार में भासित होती है। इसी का उपसंहार दो श्लोकों में किया गया है–

अकारं संनिधिं कृत्य जगतां कारणत्वतः।
इकारः सर्ववर्णानां शक्तित्वात् कारणं मतम्।।७।।
जगत् स्रष्टुमभूद् वाञ्छा यदाद्यस्य सदाभवन्।
कामबीजमिति प्राहुः मुनयो वेदपारगाः।।८।।
अकारो ज्ञप्तिमात्रः स्याद् इकारश्च कला मता।
उकारो विष्णुरित्याहुः व्यापकत्वान्महेश्वरः।।९।।

इसका भावार्थ यह है कि 'अ' शब्द कार्यकारण से रहित परमात्मा का वाचक है, इकार इसकी शक्ति है। वही सकल वाक् का कारण है। सकल जगत् के कारण होने से 'इकार' ही आकाररूपी चेतन परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त कर समस्त वर्णों का कारण होता है।।७।। सृष्टि करने के लिए परमात्मा की जो वाञ्छा (इच्छा) होती है। उसी को वेदपारग मुनि कामबीज कहते हैं ।।८।। इसी को दृढ़ करने के लिए आगे कहते हैं–'अकारो ज्ञप्तिमात्रः स्यात्' इत्यादि। अकार ज्ञप्ति (ज्ञान) मात्र है, इकार कला है और उकार व्यापक होने से विष्णु रूप है और वही महेश्वर है।।९।।

यहाँ एक शङ्का उत्पन्न होती है कि समस्त वेदान्त दर्शन में परमात्मा को अद्वैत माना गया है और यहाँ कहा गया है–चित्कला माया (जो द्वितीय है) का आश्रयण कर जगत्-रूप हो गया; इस प्रकार कहने से अद्वैत-सिद्धान्त ही नहीं बन पाता। इस विरोध को देखकर आगे कहते हैं–

ऋलृक् सर्वेश्वरो मायां मनोवृत्तिमदर्शयत्।
तामेव वृत्तिमाश्रित्य जगद्रूपमजीजनत्।।१०।।

भावार्थ है 'ऋ' परमेश्वर ने 'लृ' माया नाम की अपनी इच्छात्मिका मनोवृत्ति को ही दिखाया है, अर्थात् ईश्वर इच्छात्मिका मनोवृत्ति का ही आश्रयण कर जगत् को उत्पन्न करता है। तन्त्रों में भी लिखा है–'मम चाभून्म-नो रूपं लृकारः परमेश्वरी' इत्यादि। अर्थात्, मेरा मनरूपी लृकार ही परमेश्वरी माया

कही जाती है। इसीलिए ऋ और लृ को परस्पर तादात्म्य बताया गया है, अर्थात् दोनों का तादात्म्य (अभेद) है।।१०।।

वृत्तिवृत्तिमतोरत्र भेदलेशो न विद्यते।
चन्द्रचन्द्रिकयोर्यद्वत् यथा वागर्थयोरिव।।११।।

यहाँ इव शब्द पादपूर्ति के लिए ही समझना चाहिए; क्योंकि वह यथा शब्द से ही गतार्थ हो जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि वृत्ति और वृत्तिमान्, अर्थात् शक्ति और शक्तिमान् में भेद का लेश भी नहीं है, जिस प्रकार चन्द्र और चन्द्रिका, शब्द और अर्थ में भेद नहीं होता। इसी अभिप्राय से वाक् और अर्थ में कोई-कोई लेशत: भेद स्वीकार करते हैं ।।११।।

स्वेच्छया स्वस्य चिच्छक्तौ विश्वमुन्मीलयत्यसौ।
वर्णानां मध्यमं क्लीबमृलृग् वर्णद्वयं विदु:।।१२।।

असौ=वह परमात्मा अपनी इच्छाशक्ति से ही चिदाभास ग्रहण करने योग्य अपनी चिच्छक्ति (जिसको जगत् के कारणभूत माया भी कहते हैं) में विश्व को उत्पन्न करता है। शास्त्रकारों ने लिखा है-'मम योनिरभूद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यतहम्।' यहाँ 'क्लीव' शब्द से ब्रह्मस्वरूप का बोधन होता है। परन्तु, यह मान लेने पर भी यह शङ्का होती है कि जन्यतजनकभाव मानने पर भी अद्वैत की हानि होती है। इसके उत्तर में कहा गया है-तत् सृष्ट्वावा तदेवानु प्राविशत्। इसी सिद्धान्त से आगे कहते हैं-

एओङ्मायेश्वरात्मैक्यविज्ञानं सर्ववस्तुषु।
साक्षित्वात् सर्वभूतानां स एक इति निश्चितम्।।१३।।

यहाँ जन्यजनक शब्द् से तत्-तद् रूप से निर्वचन (भासित होना) समझना चाहिए, इसीलिए अद्वैत की हानि नहीं होती है। इसका आशय यह है कि अकार, उकार और मकार से निष्पन्न ओङ्कार से सगुण और निर्गुण दोनों के ऐक्य-बोधन होने पर भी उसी दृष्टान्त से सर्वत्र ऐक्यबुद्धि होने पर द्वैत का नाश ही ध्वनित होता है। समष्टि और व्यष्टि के भेद से पूर्ववर्ण से युक्त द्वितीय का और उससे युक्त तृतीय का समन्वय-बोधन के लिए यह सूत्र है।

ए, ऐ, ओ और औ, ये सन्ध्यक्षर वर्ण कहे जाते हैं। अकारात्मक, अर्थात् अ (ब्रह्म) इ (माया) से युक्त होकर जो एकार हुआ, वह अनुज्ञान रूप से 'उ' से युक्त होकर ओकार हो जाता है। 'प्रज्ञानं ब्रह्म' इस सिद्धान्त से विज्ञान या प्रज्ञान-रूप से समस्त' वस्तु वास्तव में एक ही होता है। इस अवस्था में नानात्व के अभाव होने से अद्वैत (द्वैताभाव) सिद्धान्त सूपपन्न हो जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि

वटबीजन्याय से अ, इ, उ, ऋ और लृ ये ही पाँच वर्ण समस्त वर्णों के योनि (कारण) होते हैं।।१३।।

अब यह प्रश्न होता है कि स्वात्मभूत परमेश्वर और जगत् का कारण किस प्रकार होता है? इस आशङ्का का उत्तर देते हैं–

'ऐऔच्' ब्रह्मस्वरूपः सन् जगत् स्वान्तर्गतं ततः।
इच्छया विस्तरं कर्त्तुमाविरासीन्महामुनिः।।१४।।

आ+ई=ऐ, आ+ऊ=औ, अर्थात्, शक्तिविशिष्टत जो कारण पहले कह चुके हैं, वही कुछ सूक्ष्मरूप को धारण कर सूक्ष्मरूप से अपने कारण स्वरूप में स्थित जो जगत् है, उसे विस्तार करने के लिए प्रादुर्भूत होता है।।१४।। इस प्रकार, कारणस्वरूप का प्रतिपादन कर कार्यभूत ब्रह्मा का प्रतिपादन करने के लिए उपक्रम करते हैं–

भूतपञ्चकमेतस्माद् हयवर महेश्वरात्।
व्योमवाय्वम्बुवह्न्याख्यभूतान्यासीत् स एव हि।।१५।।

ह, य, व, र स्वरूप जो महेश्वर है, उसी से पाँच भूतों की उत्पत्ति है। व्योम (आकाश), वायु (पवन), अम्बु (जल) और वह्नि (अग्नि) इन भूतों के रूप में वह महेश्वर थे।।१५।।

हकाराद् व्योमसंज्ञश्च यकाराद् वायुरुच्यते।।
रकाराद् वह्निस्तोयन्तु वकारादिति शैववाक्।।१६।।

हकार से आकाश, यकार से वायु, रकार से अग्नि और वकार से जल उत्पन्न हुआ, यह शिववाक्य है। अब यहाँ शङ्का होती है कि पूर्व में पाँच भूतों की उत्पत्ति की प्रतिज्ञा कर यहाँ चार की ही उत्पत्ति क्यों दिखाई?।।१६।। इसके समाधान के लिए आगे कहते हैं–

आधारभूतं भूतानामन्नादीनाञ्च कारणम्।
अन्नाद् रेतस्ततो जीवः कारणत्वाल्लणीरितम्।।१७।।

उद्भिज, स्वेदज, जरायुज और अण्डज इन चार प्रकार के भूतों के और अन्नादि के प्रधान कारण होने से आधारभूत पृथिवी 'लण्' सूत्रस्थल से उत्पन्न होती है। इसी अभिप्राय से आकाश का बीज 'हं', वायु का 'यं', अग्नि का 'र', जल का 'वं' और पृथिवी का 'लं' तन्त्रिशास्त्रों में बताया गया है।।१७।।

इसके बाद तन्मात्राओं की उत्पत्ति का क्रम बताया जाता है–

शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाश्च ञमङणनम्।
व्योमादीनां गुणा ह्येते जानीयात् सर्ववस्तुषु ।।१८।।

क, ख, ग आदि पाँच वर्गों के अन्त्य वर्णों से शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन पाँच तन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है।।१८।। ये पाँचों तन्मात्र भौतिक पदार्थमात्र में रहते हैं।

कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति का प्रकार–

वाक्पाणी च झभञासीत् विराड्रूपचिदात्मनः।
सर्वजन्तुषु विज्ञेयं स्थावरादौ न विद्यते।।१९।।
वर्गाणां तुर्यवर्गा (णा) ये कर्मेन्द्रियगणा हि ते।
घढधष् सर्वभूतानां पादपायु ह्युपस्थकाः।।२०।।

उपर्युक्त श्लोक में 'उपस्थका' यही पाठ प्राचीन पुस्तक में उपलब्ध होता है। वहाँ सन्धि का अभाव आर्षत्वात् समझना चाहिए। इनका तात्पर्य यह है–वर्गों के चतुर्थ वर्ण जो झ, भ, घ, ढ और ध के रूप में चिदात्मक का विराट् स्वरूप है, उसी से वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ इन पाँच इन्द्रियों का प्रादुर्भाव होता है, जो जङ्गम–मात्र में रहते हैं, स्थावरों में नहीं।

ज्ञानेन्द्रियों की उत्पत्ति का प्रकार इस प्रकार माना गया है–

श्रोत्रत्वङ्नयनघ्राणजिह्वादीन्द्रियपञ्चकम्।
सर्वेषामपि जन्तूनामीरितं जबगडदश् ।।२१।।

श्रोत्र, त्वक्, अक्षि (नेत्र), घ्राण, जिह्वा–इन ज्ञानेन्द्रियों की उत्पत्ति, ज, ब, ग, ड और द इन पाँच वर्णों से क्रमशः होती है, जो समस्त जन्तुओं में विद्यमान है।।२१।। मन्त्र शास्त्रों में भी लिखा है– 'वर्गेषु मध्यमा वर्गाः ज्ञानेन्द्रियगणाः स्मृताः।' वर्गों में उक्त मध्यम वर्णों से ही ज्ञानेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। प्राणादिपञ्चक और अन्तःकरण के उद्भव प्रकार इस प्रकार हैं–

प्राणादिपञ्चकञ्चैव मनोबुद्धिरहङ्कृतिः।
बभूव कारणत्वेन खफछठथचटतव्।।२२।।
वर्गद्वितीयवर्णोत्थाः प्राणादिपञ्च वायवः।
मध्यवर्गत्रयाज्जाता अन्तःकरणवृत्तयः।।२३।।

प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान-इन पाँच प्रकार की वायुओं की और मन, बुद्धि, अहङ्कार-इन अन्तःकरण की वृत्तियों की उत्पत्ति ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त इन आठ वर्णों से होती है। इनमें भी वर्गों के द्वितीय अक्षर ख, फ, छ, ठ, थ से प्राणादि पाँच वायुओं की और मध्य वर्गों के जो आद्य तीन अक्षर हैं, उनसे तीन अन्तःकरण की वृत्तियों की उत्पत्ति होती है। यही तात्पर्य है।।२२-२३।।

अब इसके बाद सबके कारणत्वै में आदि 'कवर्ग' के एक वर्ण क और अन्त्य 'पवर्ग' के प लेने से कपञ् होता है। इस क प से प्रकृति-पुरुष की विवक्षा है। इन दोनों से सम्पुटीभाव करने के लिए कहते हैं-

आद्यन्तद्वयसम्भूतौ पुरुषः प्रकृतिर्गुहा।
प्रकृतिः पुरुषश्चैव सर्वेषामेव कारणम्।।
सत्सम्भूतिस्तु विज्ञेया कपाभ्यामिति निश्चितम्।।२४।।

इसका तात्पर्य यह है कि आदि-अन्तवाले वर्गों के एक-एक वर्ण लेकर प्रकृति-पुरुष के रूप में क वर्ग से प वर्ग तक का बोधक 'कप' प्रत्याहार ही सकल वाङ्मय जगत् का उपादान होता है।।२४।। अब आगे तीन अवस्थाओं को कहते हैं-

सत्त्वं रजस्तम इति गुणानां त्रितयं पुरा।
समाश्रित्य महादेवः शषस क्रीडति प्रभुः।।२५।।

सृष्टि के आदिकाल में श ष सर् वर्णों से सम्भूत सत्त्व , रज और तम-इन तीन गुणों को लेकर भगवान् शङ्कर सर्वत्र क्रीड़ा करते हैं, अर्थात् सृष्टि, स्थिति (पालन) और संहार के कारण होते हैं।

शकाराद् राजसं रूपं षकारात्तामसोद्भवः।
सकारात् सत्त्वसम्भूतिरिति त्रिगुणसम्भवः।।२६।।

'शकार' से राजस, 'ष' से तामस और 'स' से सत्त्वगुण की उत्पत्ति है।।२६।।

तत्त्वातीतः परः साक्षी सर्वानुग्रहविग्रहः।
अहमात्मा परो हल् स्यादिति शम्भुः तिरोदधे।।२७।।

जो समस्त लोकों का जनक है, वह तो समस्त तत्त्वों से परे है ही। वही सबके साक्षीरूप में स्थित परब्रह्म परमात्मा भगवान् शम्भु समस्त लोकों के कल्याण के लिए वेदमय शरीर को प्रकट कर हल के रूप में सूचित होता है।।२७।। शैवागम में भी प्रसिद्ध है-'हकारः शिववर्णः स्यादिति शैवागमाच्छ्रुतम'

हकार शिव वर्ण है, यह शिवतन्त्र में प्रसिद्ध है। वही भगवान् शङ्कर ढक्कानिनाद के व्याज से मुनियों के लिए तत्त्वों का उपदेश देकर स्वयं तिरोहित हो गये। इस तरह नन्दिकेश्वर-कृत कारिका में शिवसूत्रों की आगमिक व्याख्या सम्पन्न होती है।

इन सबका निष्कर्ष यही होता है कि सकल शब्दों के कारणभूत मातृका ही (क, ख, ग, घ इत्यादि) है, वही परमार्थभूत स्वात्मतत्त्व के प्रकाशक जो वैदिक शब्दशास्त्र हैं, उनमें प्रवृत्ति के लिए सूक्ष्मार्थ-बोधक वर्णस्फोट के रूप में परिणत हो जाय, इस अभिप्राय से भगवान् शङ्कर ने मातृका-वर्णों का ही पौर्वापर्य क्रम को त्याग कर विलक्षण वर्णसमाम्नाय (अ इ उण् आदि) के सूत्रों के रूप में ढक्कानिनाद के व्याज से मुनियों को उपदेश किया है और पाणिनि प्रभृति को प्रत्याहार-बोधन के लिए अनुबन्धों को भी लगा दिया है। तन्त्रशास्त्रों में कहा है-

महादेवो मुनीन्द्रेभ्यो मातृकामेव सञ्जगौ।
पौर्वापर्यं परित्यज्य प्रत्याहारप्रवृत्तये।।
सर्वथा सापि नो त्यक्ता चोकुरित्यादिदर्शनात्।
स्पर्शान्तःस्थोष्मसंज्ञादिक्रमत्यागेन सम्भवेत्।।

महादेव ने मुनीन्द्रों के लिए प्रत्याहार-सिद्धि के द्वारा शास्त्रों में प्रवृत्त्यर्थ केवल पौर्वापर्य-क्रम-रहित मातृका-वर्णों का ही उपदेश किया है क्योंकि 'चोकुः', 'कुहोश्चुः' इत्यादि सूत्रों में चवर्ग, क ख ग आदि का व्यवहार देखा जाता है। दूसरी बात यह है कि क्रम के सर्वथा त्याग से स्पर्श, अन्तःस्थ और ऊष्म आदि संज्ञा भी नहीं बन सकती, यही इसका तात्पर्य है।

इस स्थिति में पूर्वाचार्यों का यह सिद्धान्त भी सिद्ध होता है कि-

यावद्वाग्विषयं तावन्मातृकायां स्थितं पुरा।
वटबीजाच्च वटवत् प्रादुर्भूतं ततः पुनः।
मातृका सर्वकल्पेषु एकैवाऽविष्कृता सदा।
न किञ्चिद्वस्तुविकृतिमेति कल्पान्तरेष्वपि ।।

शब्दों के जितने भी विषय हैं, वे सब पूर्व से ही मातृका में स्थित हैं। सूक्ष्म वटबीज से महान् वटवृक्ष की तरह सूक्ष्म मातृकाओं से ही समस्त वाङ्मय जगत् का प्रादुर्भाव होता है। मातृका सभी कल्पों में सदा एक ही प्रकार के अविकृत रूप से रहती है। कोई भी वस्तु कल्पान्तरों में विकार को प्राप्त नहीं करती, अर्थात् अविकृत रहती है।

समस्त वस्तुओं के इस प्रकार अविकृत होने में श्रुति ही प्रमाण है। जैसे-

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
सर्ववस्तुतथात्वे हि श्रुतिरेवोपलक्षणम्।।

विधाता ने सूर्य और चन्द्रमा को भी पूर्व के अनुसार ही आविर्भूत किया है। समस्त वस्तुओं की तथारूपता, अर्थात् पूर्वरूपता में श्रुति ही प्रमाणभूत है।

इस रीति से विचार करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि सनातन, नित्य (अविनाशी) प्रणव नामक स्फोट के परिणामभूत जो स्फोटरूप वर्ण हैं, वे भी सनातन नित्य ही हैं। इसलिए, अक्षरसमाम्नायस्थ (अ इ उण् इत्यादि) जो वर्ण हैं, वे ही वर्णस्फोट के उदाहरण तथा शब्दब्रह्म के सूक्ष्मरूप या सूक्ष्मशरीर हैं। मन्त्रात्मक स्थूलरूप या स्थूलशरीर हैं। मन्त्र ही अखण्ड वाक्यस्फोट के मुख्य उदाहरण हैं।

इसका रहस्य यह है कि जिस प्रकार आचार्यों ने उपाधि-भेद से नित्य अखण्ड परमात्मा के तीन प्रकार के शरीर होने की कल्पना की है-कारण शरीर, सूक्ष्म शरीर और स्थूलशरीर, उसी प्रकार वाचक शब्दब्रह्म के भी तीन शरीर की कल्पना युक्त ही हैं। 'ॐ' यह शब्द ब्रह्म का कारण शरीर है, 'अ इ उण्' इत्यादि अक्षरसमाम्नाय सूक्ष्म और तत्-तत् मन्त्ररूप स्थूल शरीर है।

इस स्थिति में जिस प्रकार स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीन शरीरों से युक्त आत्मा को जीव कहा जाता है, उसी प्रकार प्रणव, अक्षरसमाम्नाय और मन्त्र इन तीनों शरीरों से युक्त परमात्मा ही वाचकस्वरूप स्वात्मप्रकाशक होने के कारण स्फोट शब्द का वाच्य होता है, अर्थात् स्फोट कहा जाता है। यही वैयाकरणों का स्फोटविषयक सिद्धान्त है जो आगमिक परम्परा पर पूर्णतया आधारित है, यह सिद्ध होता है।